P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-9, ISSUE-2 November -2020

E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

अर्द्धघुमन्तु रायका (रैबारी जाति) समुदाय के जीवन निर्वाह में उभरती हुई समस्याएं एवं भावी विकास हेतु सुझाव (राजस्थान के विशेष संदर्भ में)

Emerging Problems and Suggestions For Future Development In The Subsistence of Ardhughumantu Raika (Rabari Caste) Community (With Special Reference To Rajasthan)

Paper Submission: 05/11/2020, Date of Acceptance: 19/11/2020, Date of Publication: 20/11/2020

भूरसिंह जाटव
सहायक प्राध्यापक,
समाजशास्त्र विभाग,
संजीवनी महाविद्यालय,
अजमेर, राजस्थान, भारत

सारांश

क्या रायका (रेबारी) जाति के लोग समायोजित हो सकेंगे ? क्या उनका सीधा फायदा उन्हें मिल रहा है या नहीं ? अगर नहीं तो क्यों ? क्या ऐसी स्थिति में अपने परम्परागत व्यवसाय को सुरक्षित रख सकेगी ? अपने सुदृढ़ीकरण के तरीकों व प्रयासों के द्वारा जो थोड़ा बहुत अपने आपको अभी तक बचाती चली आई है, क्या आगे बचा लेगी ? क्या इन बढ़ती हुई चुनौतिपूर्ण संघर्षात्मक स्थिति के कारण ये धीरे–धीरे पूर्णतया लुप्त हो जायेगी या अपने परम्परागत ज्ञान को अभी तक संजोये रखने के कारण रायका समुदाय इन स्थितियों में भी अपने पुश्तैनी धन्धे को बचा सकेगी ? क्या इस युग में भी महादेव रचित ऊँट की रखवाली कर अपने धर्म व्रत का पालन कर पायेगी ? ये कुछ प्रश्न है जिनके आधार पर इस समुदाय की वस्तुस्थिति को समझाने का प्रयास करेंगे तथा जिनका उत्तर भी देने या ढूंढ़ने का प्रयास करेंगे। संक्षेप में हम इस शोधपत्र में रायका समुदाय की ऊँट व भेड़ पालन में आई चुनौतियों व संघर्षों का, समस्याओं के परिणाम व समाधानों की रीति–नीति की विवेचना और विवरण देगें। मुख्यतः रैबारी जाति भारत के गुजरात, राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, मध्यप्रदेश, नेपाल और पाकिस्तान में भी निवास करती है। उत्तरी राजस्थान जयपुर और जोधपुर संभाग में इन्हें 'राईका' नाम से जाना जाता है हरियाणा और पंजाब में भी इस जनजाति को राईका ही कहा जाता है। गुजरात और मध्य राजस्थान में इन्हें देवासी, रैबारी, रबारी, देसाई, मालधारी और हीरावंशी नाम से भी पुकरा जाता है।

Will people of Raika (Rebari) caste be able to adjust? Are they getting their direct benefit or not? If not why? Can you protect your traditional occupation in such a situation? Through the methods and efforts of your reinforcement, which has kept protecting itself a little so far, will you save further? Will these gradually vanish completely due to these increasingly challenging conflict situation or will the Raika community be able to save their ancestral occupation even under these conditions so far? Will Mahadev be able to observe his Dharma fast by keeping camels composed in this age also? These are some questions on the basis of which we will try to explain the status of this community and will also try to answer or find out. In short, in this paper we will discuss and explain the challenges and struggles of the Raika community in camel and sheep farming, the results of problems and the policy of solutions. Rabari caste is mainly inhabited by Gujarat, Rajasthan, Haryana, Punjab, Madhya Pradesh, Nepal and Pakistan in India. In northern Rajasthan, Jaipur and Jodhpur divisions, they are known as 'Raika'. In Haryana and Punjab, this tribe is also called Raika. In Gujarat and central Rajasthan, they are also named as Devasi, Rabari, Rabari, Desai, Maldhari and Hiravanshi.

मुख्य शब्द : रायका (रैबारी), जीवन निर्वाह, भावी विकास, पशुपालन, समाज।
Raika (Rabari), subsistence, future development, animal husbandry, society.

प्रस्तावना

रेबारी जाति का इतिहास बहुत पुराना है। लेकिन शुरु से ही पशुपालन का मुख्य व्यवसाय और घुमंतू (भ्रमणीय) जीवन होने से कोई आधारभूत ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा नहीं गया और अभी जो भी कोई आधारभूत ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा नहीं गया और अभी जो भी इतिहास मिल रहा है वो दंतकथाओं पर आधारित है। प्रत्येक जाति की उत्पत्ति के बारे में अलग–अलग राय होती है, उसी प्रकार रैबारी जाति के बारे में भी एक पौराणिक दंतकथा प्रचलित है– कहा जाता है कि माता पार्वती एक दिन नदी के किनारे गीली मिट्टी में ऊँट जैसी आकृति बना रही थी तभी वहां भोलेनाथ भी आ गये। माँ पार्वती ने भगवान शिव से कहा –!हे महाराज क्यों न इस मिट्टी की मूर्ति को संजीवित कर दो। भोलेनाथ ने उस मिट्टी की मूर्ति (ऊँट) को संजीवन कर दिया। माँ पार्वती ऊँट को जीवित देखकर अतिप्रसन्न हुयी और भगवान शिव से कहा–हे! महाराज जिस प्रकार आप ने मिट्टी के ऊँट को जीवित प्राणी के रुप में बदला है, उसी प्रकार आप ऊँट की रखवाली करने के लिए एक मनुष्य को भी बनाकर दिखलाओं। आपको पता है। उसी समय भगवान शिव ने अपनी नजर दोड़ायी सामने एक समला का पैड़ था। समला के पेड़ के छिलके से भगवान शिव ने एक मनुष्य को बनाया। समला के पेड़ से बना मनुष्य सामंड़ गौत्रा (शाख) का रैबारी था। आज भी सामंड़ गौत्रा रेबरी जाति में अग्रणीय है। रेबारी भगवना शिव का परम भगत था।

अध्ययन का उद्देश्य

1. रायका (रैबारी) जाति के जीवन निर्वाह से उत्पन्न समस्याओं का अध्ययन करना।
2. रायका (रैबारी) जाति के जीवन निर्वाह से उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु भावी सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध परिकल्पनाऐं

1. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में रायका (रैबारी) जाति के जीवन निर्वाह से निरन्तर समस्याऐं बढ़ती जा रही है।
2. जीवन निर्वाह से बढ़ती समस्याओं के परिणामस्वरूप समाज का जीवन स्तर निरन्तर गिर रहा है।

अध्ययन विधि एवं आकंड़ों का संकलन

प्रस्तुत शोध कार्य में प्राथमिक व द्वितीयक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र में प्रस्तुत प्राथमिक आंकड़ें आनुभाविक आधार पर लिए गये है, जबकि द्वितीयक आंकड़ें सरकारी और गैर सरकारी लेखों और प्रतिवेदनों द्वारा तैयार किये गए है।

साहित्यावलोकन

समाजशास्त्री डॉ. उत्तरा कोठारी ने अपने शोध में 'अरावली तलहटी की रायका जाति खानाबदोश का समाजशास्त्रीय अध्ययन' 1995 में किया। इन्होंने अपने अध्ययन में प्रमुख रूप से रायका जाति के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अपने शोध कार्य का पूर्ण किया है।

समाजशास्त्रीय राल्फसन कोल्हर और देवाराम देवासी ने 'पश्चिमी राजस्थान में रायका जाति का अध्ययन' किया (1991)। इन्होंने अपने अध्ययन में रायका जाति की जीवन शैली को वर्तमान सन्दर्भ में समझने एवं इनकी उपयोगिता के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अपना शोध कार्य पूर्ण किया।

प्रोफेसर वी.के. श्रीवास्तव ने 'राजस्थान में रायका जाति का ऐतिहासिक सिंहावलोकन 1985 करके उनसे आये प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सामाजिक परिवर्तन की प्रवृत्ति पर अपना शोध केन्द्रित किया है।

समाजशास्त्री डॉ. उत्तरा कोठारी ने अपने शोध में 'अरावली तलहटी की रायका जाति खानाबदोश का समाजशास्त्रीय अध्ययन' 1995 में किया। इन्होंने अपने अध्ययन में प्रमुख रूप से रायका जाति के सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर अपने शोध कार्य का पूर्ण किया है।

डॉ. प्रज्ञा शर्मा का 'जनजाति समाज में बदलाव' 'रायका का मानवशास्त्रीय– समाजशास्त्रीय अध्ययन'– 2005 में अध्ययन किया जिसमें रायका जाति की समस्याऐं, उनके विकास के कार्यक्रम सामाजिक, सांस्कृतिक एवं स्वास्थ्य में बदलाव आदि पर प्रकाश डाला है।

William Crooke ने Raika Rebari as Semi Nomadic Pastoralists of Rajasthan को विवेचनात्मक तुलनात्माक विवरण अपनी पुस्तक The Tribes and Casts of the North Western India, 2019 में उल्लेख किया है इसमें जाति का सामाजिक संस्तरण बताया गया है। उन्होंने लिखा है कि रायका जाति अपने आप में सवर्ण जाति है जो कि जाटों, अहीरों, एवं राजपूतों से संबंधित है। विलयम क्रुक कर्नल जैम्स टॉड के द्वारा निर्मित रैबारी पर विवेचन के द्वारा अभिप्रेरित थे। टॉड ने स्पष्ट किया कि रैबारी भाटी जनजाति से संबंधित थे। जो कि बाद में स्वयं को राजपूत मानने लगे। भाटी 'यहु' या 'जादू' प्रजाति थी। यमुना से घाटिका लेकर एक शासित थी।

के.एस.सिंह ने एक रूचिकर एवं व्यवस्थित उल्लेख 'राजस्थानी रेबारी' राहाबारी/रायका की जीवन पद्धति का किया है जो Indian Communities A-Z, Jan. 2020 में पाया जाता है। सिंह के अनुसार यह समुदाय देवांगी या ऊंटवाले के नाम से भी जाना जाता है जो कि विस्तृत रूप 'राजपूताना, अजमेर, मारवाड़ा और केन्द्रीय भारत में फैला हुआ है। वे एक दो महीने, तीज त्यौंहारों जैसे कृष्ण जन्माष्टमी आदि पर स्वयं के स्थानीय घरों पर रहते हैं। इसके बाद पशुपालक के रूप में गतिशील होते रहते हैं। इस पुस्तक में रायका समुदाय की आदमी एवं महिलाओं की पोशाक, आभूषणों पर विस्तृत वर्णन मिलता है। उनके सामाजिक एवं पारिवारिक तथा व्यक्तिगत विश्वासों का मार्गदर्शन किया गया है।

इसके अतिरिक्त Tames Lachye dh iqLrd Poer, Profit and Profit, प्रकाशित 2019 में राजस्थान में रायका या रैबारी जाति से संबंधित तथ्य परख अध्ययन किया गया है। डॉ0 Ilse Kohler Rollefson, Purendu Kavoori, Dr. Arun Agarwal, Westphal Hellbush, Vinay Kumar Shrivastava आदि विद्वानों ने रायका (रैबारी) घुमन्त समुदाय पर विविध रूप में प्रकाश डाला है जिसका क्रमबद्ध अध्ययन कर शोध कार्य पूर्ण किया गया है।

राजस्थान लोक दिशा– हिन्दी पाक्षिक – प्रकाशक – उम्मेद सिंह रेबारी, अम्बर ऑफसेट प्रा.लि. केशवपुरा, भांकरोटा, विद्याधर नगर, जयपुर 10 नवम्बर 2019, नवम्बर 2020 में राजस्थान की रायका (रैबारी) जाति समुदाय के सामाजिक आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश ड़ाला गया है।

जनगणना राज्य एवं जातिवाद सन् 1931 (राजपूताना), 2011 देवांसी श्री जयते हिन्दी मासिक पत्रिका – अमानाराम रायका, प्रकाशन जोधपुर 2019–20 में रायका (रैबारी) जाति की सामाजिक समस्याओं एवं उनके जीवन निर्वाह में उभरती हुई बाधाओं पर प्रकाश ड़ाला गया है। जिनका प्रस्तुत शोध पत्र में बखूबी से सहयोग प्राप्त है।

अर्द्धघुमन्तु रायका (रेबारी) जातीय समुदाय के जीवन निर्वाह में उभरती हुई समस्यायें

रायका जीवन–अस्तित्व की समस्या

आज रायका अपनी सामाजिक–सांस्कृतिक मान्यताओं के आधार पर उतना परिभाषित नहीं किया जा सकता, जितना समान कठिनाईयों से सामूहिक रूप से सभी सामना कर रहे हैं, के आधार पर परिभाषित होता है। रायका समुदाय का सदस्य दिन–प्रतिदिन के जीवन में न केवल जीवित रहने के लिए संघर्षरत है, परन्तु जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूर्णरूपेण प्राप्त करने में असक्षम हो रहा है। इस क्षेत्र में पाया गया कि इसी कारण 50 प्रतिशत समुदाय सदस्य अपनी न्यूनतम मूल आवश्यकताओं पर जीवित रह रहे हैं। फिर भी संघर्षमय चुनौतीपूर्ण जीवन के मध्य अलमस्त विचरण कर रहे हैं। ये खराब इलाके, खराब परिस्थितियों में अपने जीवन को दांव पर लगाने के लिए कभी कतराते नहीं है। प्रकृति से अनवरत संघर्ष करते हुए, न केवल अपने पेट की उसे चिन्ता रहती है, बल्कि अपनी रोटी के साथ साझेदार प्राणियों का भी पेट भरना पड़ता है। वे अपनी व अपनों की उदरपूर्ति के लिए नियमि कठिन परिश्रम में लीन रहते हैं। इसके लिए आज भी अनेकों को यायावर जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है, जहां कई को तो महीनों तक नहाने का अवसर उपलब्ध नहीं होता है। खाना भी पका, अधपका, कभी सम्भव तो कभी असम्भव और तो और कई दिनों तक केवल ऊँटनी, लड़ी के दूध पर रहकर जीवन व्यतीत करना होता है। अपने व अपने पशुधन की रक्षा व पालना पूरे वर्ष में आठ से नौ माह घूम कर करनी पड़ती हैं कई बार गांव में 'ठियो' (घर–बार) पर होने पर भी पूरे साल भर आने तक मौका नहीं मिलता है। शादी–विवाह, मौत–मृत्यु, पर्व–त्यौहार पर अपनी परम्पराओं को पूरा करने के लिए अवश्य पहुंचने का इनका प्रयास होता है, परन्तु कई बार सम्भव नहीं हो पाता हैं जंगलों के संकट, रेत के थपेड़ों, आंधी पानी की बौछार और प्रकृति की कोख में अपना बहुत ही सरल, स्वाभाविक, स्वच्छ, अभावग्रस्त जीवन जीते हैं।

रायका पशुपालकों के प्राकृतिक संघर्ष– मरू क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के व्यक्तियों के लिए शुष्क–अर्द्धशुष्क, पठारी व पर्वतीय क्षेत्रों में लगातार सूखे, खाद्य सामग्री की आपूर्ति व अकाल की दशा के कारण जीवन–यापन में खेती की अपेक्षा पशुधन का विशेष सहयोग होता है। राज्य में बार–बार सूखे की दिशा में पशुपालकों को अन्य स्थानों पर निरन्तर निष्क्रमण पर रहना होता है। वहीं पाली जिला, अरावली की तलहटी में होने, पशु की संख्या ज्यादा होने, सीमावर्ती जिलों के निष्क्रमण, पशु का साझी भूमि (कोमन भूमि) पर पड़ाव व चराई होने पर यहां के पशुपालकों (रायकाओं) के लिए नियमित रूप से ठहराव समस्या उत्पन्न करती है जिसके परिणामस्वरूप इस जिले के कुछ रायका परिवारों को साल में नौ माह तो कभी अनेकों वर्षों तक बाहरी क्षेत्रों में रहना पड़ता है, वहीं कई को घूम–घूम कर चराई भी करनी होती है। तब वे भी वहां सबकी साझी भूमि (कोमन भूमि) पर स्वतंत्र चराई पर निर्भर रहते हैं। जहां प्रायः घनी झाड़ियों, पुष्ट पेड़–पौधों का अभाव होता है तो कई बर जंगल खाली होते हैं। परिणामस्वरूप पशुओं को घटिया किस्म का चारा व घास खिलानें के लिए बाध्य होते हैं, जिससे पशु कुपोषण का शिकार होता है और स्वदेशी नस्ल में गिरावट आती है। सूखे में सम्पूर्ण रेवड़ के सफाया हो जाने का इन्हें भय बना रहता है, वहीं अकाल में निष्क्रमण क्षेत्रों के नये मार्ग पर जाने से उत्पन्न संकटों का खौफ इन पर छाया हुआ रहता है। यहां चारे की अपेक्षा पानी का अभाव आसानी से दूर नहीं किया जा सकता है। पिछले वर्षों में इस क्षेत्र में अकाल ने त्रिकाल का रूप धारण किया है। इससे पशुधन को भारी नुकसान पहुंचा और इन्हें गम्भीर पशुधन की हानि उठानी पड़ी। ऐसे कई उत्तरदाता रहे जिन्होंने अपना सारा कमाया धन, पशुधन में लगाया और वह एकाएक नष्ट हो गया तथा आज उनके पास ऐसा कोई साधन नहीं है जिससे कि अपनी आजीविका को पुनः जीवित कर लें, वहीं ऐसे उत्तरदाताओं से मिलने व सुनने का मौका भी मिला, जिसकी पूरी रेवड़ का सफाया होने पर उनके क्षेत्र समुदाय ने पुनः एक–एक पशु (भेड़) देकर व्यवसाय को पुनः जीवित किया। अतः रायका समाज अपने Societal Sustainability के प्रणाली के आधार पर सहायता कर चुनौतीपूर्ण स्थिति से बचने का समुदाय ने उपाय खोज रखा है।

जब आवश्यकता के अनुसार वर्षा नहीं होती या कम वर्षा होती या होने में देर हो जाती है तभी सूखे व अकाल की स्थितियों का जन्म होता है। अभाव की स्थितियां जब मानव नियंत्रण से बाहर होने लगती हैं तब रायका अपने रेवड़ व टोलों को लेकर निकटवर्ती राज्यों में चारे व पानी की तलाश में पलायन करने लगते हैं, अगर निकटवर्ती राज्यों में भी अभाव व सूखे का प्रकोप होता है तो उनके पशुओं को कोई विशेष लाभ नहीं होता है। चारे व पानी की अनिश्चित स्थितियों में ऊँट जैसे मवेशियों का भरपेट गुजारा नहीं होता है। एक ओर जहां मवेशी भूख

और बीमारी से मरते हैं, वहीं गर्भपात भी ज्यादा होता है। इससे पशु व पशुधन की हानि के साथ–साथ पड़ौसी राज्यों की आपसी रंजिश व विरोध की यातनाओं का शिकार भी बनना पड़ता है। अतः इनके स्वयं के अस्तित्व की कठिनाई बढ़ जाती है।

रायका पशुपालक के पशु चारागाह एवं पशु चराई की समस्या–चालीस वर्ष पूर्व रायका समुदाय के सदस्यों के लिए टोले में ऊँटों की संख्या 100 से 200 तक व रेवड़ में 400 से 600 तक भेड़े होना आम बात थी। पशु आहार, स्थानीय इलाके के साथ ही निष्क्रमण मार्ग पर व कृषकों के खेतों में फसल कटाई के पश्चात् प्रायः उपलब्ध हो जाया करता था। कृषक व पशुपालक के खाद व आहार पूर्ति की पारस्परिक आवश्यकता के कारण अन्योन्य सम्बन्ध सहज, संगठित व व्यवस्थित होते थे। इन अन्योन्यता व पारस्परिक समझौते के कारण दोनों पक्ष अन्योन्यत रियायतें भोग परस्पर विश्वासी जीवन जीते थे। पारस्परिक निर्भरता एक–दूसरे के नजदीक आने व एकता के सूत्र में उन्हें बंधने के लिए बाध्य करती थी। प्रत्येक समस्या को भी आपस में मिल बांटकर समाप्त करने की इनकी परम्परा रही है। पारस्परिक रूप में प्रत्येक गांव में काश्त योग्य भूमि, चारागाह योग्य भूमि, बंजर भूमि, असिंचित भूमि होती है। सामूहिक चारागाह जमीन 'गोचर' (सामूहिक चारागाह की भूमि है जहाँ पर गांव की सभी जातियां पशु को चरवाई करवाते हैं। जहाँ से ग्रामीणों को ईंधन तथा जड़ी–बूटियाँ भी उपलब्ध होती है), तालाब की आंगोर तथा धर्म स्थल जमीन, 'औरण' (मंदिर के चारों ओर खाली पड़ी जमीन है। औरण मंदिर की भूमि है, जहाँ लगे पेड़–पौधों पर ग्रामीण क्षेत्र में पशुपालन पशु चराई करवाते हैं), अमोल, जोरबीर तथा बंजर भूमि पर सामूहिक रूप से सभी जातिगत सदस्यों को पशु चराई की अनुमति होती है। वहीं बंजर भूमि से ईंधन मिलता है, परन्तु मानव व पशु जनसंख्या वृद्धि, 1950 के प्रारम्भ में हुए भूमि सुधार अधिनियम, प्राकृतिक संसाधनों का संकुचन, परम्परागत चारागाह व्यवस्था में उत्पन्न व्यवधान, वन क्षेत्रों का अतिचरण, भूमि, जल तथा वनस्पतियों का अधोपतन, अतिरिक्त कृषि भूमि का विकास, वनोन्मूलन (Deforestation) फसल भूमि व सिंचाई व्यवस्था का कुप्रबन्ध इत्यादि कारकों के नकारात्मक परिणाम के कारण स्थापित व्यवस्था डगमगाने लगी है। रायका पशुपालकों ने प्रतिक्रिया स्वरूप सामान्य व्यवहारिक वैकल्पिक मार्ग, अस्थाई, स्थाई व दूरस्थ निष्क्रमण का रास्ता अपनाते हुए अपने जीवन निर्वाह के आधारों को समेटते हुए हर हालात में जीने का प्रयास करते हैं, जिससे इनका जीवन अधिक घुमन्तु बना और इनके निष्क्रमण की गति में वृद्धि भी दिखाई देने लगी।

रायका पशुपालक के जंगलात की समस्या– रायका समुदाय से प्राप्त सूचनाओं के अनुरूप 1948 में देशी राज्यों के विलय के बाद जैसे–जैसे जंगलात के नियमों में परिवर्तन आया और समयानुसार आता जा रहा है, उससे भूमि नीति तथा जंगलात की नीतियों में पारम्परिक सहसम्बन्धता अपेक्षाकृत असम्बन्धित होती जा रही है। जंगल के कब्जे (Encroachment) की समस्या विकराल रूप धारण करते हुए इन पशुपालकों के जीवन तथा उनके पशु–पालन व्यवसाय को अत्यधिक अस्थाईत्व प्रदान कर रही है, जिससे इनका व्यवसाय अत्यधिक कठिन, जटिल, तनावपूर्ण व संघर्षमय प्रकृति का बनता जा रहा है। जंगल के बन्द होने से पुलिस, चोर, लुटेरे, हत्यारे सरकारी प्रशासनिक प्रबन्धकों, वन अधिकारियों व अफसरों के सम्पर्क में इन्हें आना होता है, जो अनेक ज्यादतियां अत्याचार कर इनका शोषण करते हैं। उनके मन–मरजी तथा सरकारी नियमों द्वारा लिये या लगाये मुद्रक दण्ड का हमेशा इन्हें भय रहता है। जिससे ये पशुधन की रक्षा, चारे व पानी की व्यवस्था घूम–घूम कर करते हैं। निष्क्रमण मार्ग में आये जंगलात के बन्द होने से मवेशियों की चराई की आपूर्ति की समस्या, वनस्पतियों के अतिशीघ्रता से नष्ट होने तथा जंगली वनस्पतियों के सेवन की सम्भावना के बढ़ जाने से इनके पशु की मृत्यु दर दिन–प्रतिदिन बढ़ रही है, वहीं जंगलात में लूट–खसोट, अपहरण व हत्या के आतंक से ये हर समय दुखी रहते हैं।

रायका पशुपालक के पशुपालन की आर्थिक समस्या– पशु धन की राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका है। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में आर्थिक स्थिरता के दृष्टिकोण से जीवन यापन हेतु पशुधन फसल उत्पादन से ज्यादा लाभकारी माना जाता है। राज्य की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पशुधन एक महत्वपूर्ण परिसम्पत्ति मानी जाती है। रायका जाति का परम्परागत व्यवसाय ऊँट व भेड़ पालन रहा है। यह समुदाय अपने परम्परागत ज्ञान के आधारपर परिस्थिति अनुसार उत्तम नस्ल के पशु उत्पादक व उनके रख–रखाव हेतु कठोर परिश्रमी रहे हैं। आज भी ये देश के लिए 75 प्रतिशत ऊँट व 25 प्रतिशत भेड़ का उतपादन कर रहे पशुपालकों में प्रमुख हैं। इस जाति के 2 लाख से भी अधिक व्यक्ति सीधे ऊँट, भेड़ पालन से अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं तथा इतने ही परिवार ऊन प्रोसेसिंग क्रियाओं में सलंग्न हैं तो 10 से 15 लाख व्यक्ति मांस, ऊन, हड्डियों से बनी हस्त–शिल्प वस्तु उत्पादन आदि सहायक व्यवसायों में लगे हैं। इस प्रकार रायका समुदाय के सदस्य की पशु आय के अतिरिक्त पशु से प्राप्त ऊन, चमड़ा, खाद, दूध, मांस भी सीमित आय के स्त्रोत रहे हैं जैसे कि ज्ञात होता है कि आज विश्व में भेड़ों की लगभग एक हजार नस्ल हैं और भारत में करीब पाई जाती है। यद्यपि सभी नस्ल की भेड़ें ऊन उत्पादन नहीं करती है बल्कि इनमे से कई मांस व कुछ दूध के लिए पाली जाती है। रायकाओं का मत है कि आज राज्य में भेड़ पालन से ऊन उत्पादक अधिक है। यदि ऊन के रेशे लहरदार होते हैं तथा ऊन जितनी अच्छी किस्म की होती है।

रायका पशुपालक समाज की सामाजिक समस्या– आज इनके जीवन में बढ़ती हुई समस्याओं के उपरोक्त सभी कारणों के अतिरिक्त सामाजिक कारकों व स्थितियों का भी विशेष योगदान रहा हैं सामाजिक रूप से इनके समाज में शैक्षणिक स्तर पर अशिक्षा, निम्न जीवन स्तर पर गरीबी, अज्ञानता से पिछड़ापन वे मूल कारण रहे हैं जिससे इनके जीवन में नाना प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ है। वहीं स्वयं की व्यवहार, आदतें, मूल्य, मान्यताओं, प्रथाओं, संस्थाओं ने इनके जीवन को अनेक छोटी बड़ी समस्याओं के घेरे में बांध रखा है। आज ये

अपने दकियानुसी विचारों से ऊपर उठ नहीं पा रहे हैं और बाल विवाह, सांग प्रथा, मृत्युभोज, बेमेल विवाह, की प्रथा, अफीम के सेवन जैसी अनेकों सामाजिक कुरीतियों व अन्धविश्वासों के परिणाम को झेल रहे हैं। पुराने रीति–रिवाज के परिवेश में रहते आधुनिक मान्यताओं से कट और अलग–थलग हैं। आज भी यह अपने परम्परागत तौर तरीके से रहने, सोच विचार करने के कारण समय–समय पर सरकार द्वारा चलाई गई विकास योजनाओं का लाभ प्राप्त करने में असमर्थ है।

भावी विकास हेतु सुझाव

आज रायका समुदाय अनेक समस्याओं के दायरे में जकड़ा जा रहा है, जिससे इस वर्ग की माली हालत दयनीय होती जा रही है। यद्यपि पिछले 50 वर्षों से समय–समय पर यह समुदाय, सरकार के समक्ष अपनी समस्या के समाधान के मांग–पत्र क्षेत्रीय संगठन, राजकीय, अखिल भारतीय संघों के माध्यम से प्रस्तुत कर रहा है, परन्तु दुर्भाग्यवश केन्द्रीय व राज्य सरकारों के द्वारा आज तक पशुओं के विकास के लिये कोई भी कारगर व्यवहारिक उपाय नहीं खोजे गये हैं, न ही गरीब पशु पालक के कल्याण हेतु नीति–निर्धारित की गई। इनका मानना है कि आज समय आ गया है जब पशुपालकों को स्वयं ही जागरूक होकर सरकारी रीति–नीति को समझकर अपनी प्रतिनिधित्वता, भागीदारी द्वारा सुधार करना होगा, वहीं समुदाय के बुजुर्ग सदस्यों का यह भी मानना है कि "विभिन्न संघर्षों, कठिनाइयों व समस्याओं के मध्य इस व्यवसाय को अभी भी जीवित रखना, उनके द्वारा अपनाये गये मध्यम व नये रास्ते हैं।" यद्यपि इनके नवोत्पादक जनन (Generating Innovation) कई बार बाहरी सहायता पर आधारित होते हैं व कई बार बिना सहारे के होते हैं। आज तक उनके व्यवसाय का सुदृढ़ीकरण का मुख्य कारण उनके द्वारा हर नई परिस्थिति के साथ किया जाने वाला समायोजन तथा गलतियों का निवारण है, जिन्हें उन्होंने एक बार कर ली थी। उनके मतानुसार ऊँट, भेड़पालन व्यवसाय को वे अपने आधारों पर कितना ही कठोर, परिश्रम कर बचाना चाहे तो भी जीवन–निर्वाह मुश्किल है, जब तक उन्हें सुरक्षित संसाधन, जिसमें भूमि, चरागाह, जंगल, ग्वाल, पशुधन तथा उनके सहायता हेतु बने विकास कार्यक्रमों की जानकारी न हो। अतः ये अनुभव करते हैं कि इनके बचाव के लिए वन योजना, नीतियों में उनकी भागीदारी बढ़ानी चाहिए जिससे इनका सीधा लाभ इस समुदाय को मिल सके। दूसरा रायका द्वारा अपनाई गई अब तक की सुदृढ़ीकरण की रीति–नीति को सरकार अपनी योजनाओं में समाविष्ट करती है तो विकास का प्रतिफल कई गुणा ज्यादा देखा जा सकेगा। सरकार के द्वारा भागीदारी विकास श्रेणियों को खोजा जाना चाहिए तथा समुदाय की समकालीन आवश्यकता व संकटों को विशेष ध्यान में रखते हुए विकास योजनाओं को रूप देना चाहिए, तभी एक सुदृढ़, सफल, सामाजिक–आर्थिक विकास हो सकेगा।

बढ़ती जनसंख्या, घटती चराई के दबाव के कारण, दिन–प्रतिदिन की दयनीयता का अहसास करते हुए कई स्थानीय रायका विकास संगठनों ने समय–समय पर सरकार को बराबर दरखास्त की है कि जो वन क्षेत्र और पठारी क्षेत्र, अरावली वन क्षेत्र–सिरोही, पाली, उदयपुर, जोधपुर, जालौर, बाड़मेर, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, चित्तौड़गढ़, राजसमन्द, कोटा, भीलवाड़ा, बून्दी, बारां, टोंक, अजमेर, जयपुर, सीकर, भरतपुर, धोलपुर, सवाई माधोपुर आदि में आ रहे हैं उनमें चराई के क्षेत्र को बढ़ाया जाये। स्थान–स्थान पर वन–विभाग ने जिन वनों को आरक्षित कर दिया है, उन्हे खुला करवाया जाये। वनों को ठेके पर देने की प्रथा लगातार बढ़ रही है, जिससे ठेकेदारों से जो शोषण पूर्ण जीवन इन्हें जीना पड़ रहा है, उसे रोकने के लिए ठेका पद्धति को नियमित करवाया जावे, अन्यथा बंद। इतना ही नहीं निष्क्रमण काल के दौरान होने वाली लूटपाट, चोरियों, खूनी संघर्ष, अन्य ज्यादतियों से ये हर समय डेर तथा सहमे रहते हैं, अतः आवश्यकता है कि इस पर निगरानी की व्यवस्था बढ़ाई जाये तथा मानवाधिकार आयोग की स्थापना की जावे, जो निष्क्रमण काल के दौरान आने वाली कठिनाईयों के निराकरण के लिए प्रयास करें।

क्षेत्रीय उत्तरदाताओं से आये सुझावों को देने से हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि सरकार रायका समुदाय या अन्य पशुपालन समुदायों के उत्थान, विकास हेतु काई प्रयास नहीं कर रही है। सरकार अवश्य राहत, सहायता, सहयोग, मनोबल व आत्मविश्वास जागृति करने के लिए कार्यक्रम चलाकर, इन लोगों को हर सम्भव लाभ पहुंचाने का प्रयास कर रही है। जैसे आज राजस्थान में ग्रामीण क्षेत्रीय विकास हेतु कृषक परिवारों के साथ पशुपालन परिवार के लिए कई सरकारी, अर्द्ध–सरकारी व स्वयं सेवी संगठनों ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कार्यक्रम संचालित किये हैं। इनमें निम्न सरकारी कार्यक्रम प्रमुख हैंः–

1. सूखा संभाव्य क्षेत्र कार्यक्रम ;DPAP) Drought Prone Area Programme
2. मरू विकास कार्यक्रम, ;DDA) Desert Development Programme
3. अरावली विकास कार्यक्रम, ;AAP) Aravali Afforestation Programme
4. व्यर्थ भूमि विकास कार्यक्रम, Waste Land Development Programme
5. अकाल राहत कार्यक्रम, Drought Relief Programme
6. वन विकास कार्यक्रम, Forest Programme Policy
7. मगरा क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम
8. डाग क्षेत्र विकास कार्यक्रम

इसके अलावा राज्य के विकास के लिए न्यूनतम आधारभूत ढ़ांचा उपलब्ध कराने के लिये न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (Minimum Need Programme, MNP) भी संचालित किया जा रहा है। इसी तरह निर्धनता निवारण हेतु (Integrated Rural Development Programme, RDP) लागू किया गया। इसके अतिरिक्त 1 अप्रैल, 1999 में राज्य में रोजगार बढ़ाने के लिये जवाहर ग्राम समृद्धि योजना बनी। इसमें 50 प्रतिशत लाभ अनुसूचित जाति, जनजाति तथा पिछड़े वर्गों के लिए सुरक्षित रखे गये। अतः ये सभी क्षेत्रीय विकास योजना थी। इसमें क्षेत्रीय आधार पर कृषि विकास के साथ सहायक व्यवसाय पशुपालन हेतु पशु के चारे, पानी व चराई क्षेत्र की समस्या के लिए योजना बनी है।

पशुचारणी अर्थव्यवस्था और स्थानबद्ध कृषि का उदय और प्रगति साथ–साथ हुई। आज भी पशुचारणी को कृषि प्रधान आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका महत्व आर्थिक के साथ सामाजिम व राजनैतिक भी है। राज्य में देश की पशुधन शक्ति 35 प्रतिशत उपलब्ध है। राज्य में देश के कुल दुग्ध उत्पादन का 10 प्रतिशत, बकरे का मांस 30 प्रतिशत एवं ऊन उत्पादन 40 प्रतिशत होता है। साथ ही राज्य के विभिन्न आर्थिक संसाधनों में पशु पालने से लगभग 15 प्रतिशत राजस्व की प्राप्ति होती है। इस आमदनी को ध्यान में रखते हुए राज्य सरकार ने ग्रामीण योजनाओं के अलावा पशु उत्पादन, पशुपालकों को सीधा लाभ पहुंचाने और आर्थिक विकास करने के लिए 1958 में राज्य में पशुपालन विभाग की स्थापना की गई। इस विभाग के निरन्तर प्रगति और पशु की बढ़ती संख्या के फलस्वरूप पशुपालन विभाग में कालान्तर भेड़ व ऊन विभाग राजस्थान, राज्य सहकारी डेयरी फैडरेशन को जन्म दिया है। आज यह विभाग पशु उत्थान व पशु पालकों के हितों की रक्षा करने के लिए, ग्राम आधार योजनायें बनाकर जिला स्तर पर उपकेन्द्रों पशु चिकित्सालय, पशु औषधालय तथा चल पशु चिकित्सक इकाई की स्थापना कर इनको क्रियान्वित कर रहा है। आज इन केन्द्रों के माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान के साथ बांझपन निवारण की चिकित्सा, सामान्य चिकित्सा, रोग निरोधक टीकाकरण, प्राकृतिक गर्भाधान निरोध आदि विभिन्न प्रकार के कार्य कर पशुपालकों को सेवाऐं सुलभ करा रहा है। नस्ल सुधार के कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्नत नस्ल के नर पशु भी वितरित किये जाते हैं। समय–समय पर विभाग प्रदर्शनी का आयोजन कर, इसमें पशु रख–रखाव, उत्तम दवाईयों तथा अपनी विभिन्न योजना से अवगत कराकर, पशुपालन के लिये पशुपालक को प्रोत्साहित करता है। यह विभाग पशुपालकों को इस व्यवसाय के तकनीकी प्रकाशनों का निःशुल्क वितरण भी करता है और पशु कल्याण पखवाड़े का आयोजन कर दूरदर्शन व आकाशवाणी पर पशु कल्याण जागृति उत्पन्न कर व्यवसायिक ज्ञान में वृद्धि करता है। इसके अलावा पशुपालन तकनीकी ज्ञान प्रदान के प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना जयपुर, कोटा, जोधपुर व उदयपुर में की गई है। इसी के साथ ही पशुधन उत्पाद व पशुपालकों को सही मूल्य मिले, इसी उद्देश्य से राज्य में 250 से अधिक पशु मेलों का आयोजन नगरपालिका, नगर परिषद व ग्राम पंचायत समिति द्वारा कराया जाता है।

भारत में ऊँटों की संख्या तथा प्रजनन की दृष्टि से राजस्थान का सर्वोच्च स्थान माना जाता है। राजस्थान की जैसलमेरी व बीकानेरी ऊँटों की नस्ल विशेष प्रसिद्ध रही है। जैसलमेरी ऊँट मरूभूमि पर यात्रा के साधन रहे हैं तो बीकानेरी ऊँट की सवारी व वजन ढ़ोने के काम में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस कारण शुद्ध नस्ल के ऊँटों के प्रजनन हेतु नवम्बर, 1950 में बीकानेर के समीप जोड़बीड़ नामक स्थान पर उष्ट्र प्रजननशाला की स्थापना की गई और इस फार्म पर सलेक्टिव एवं नियंत्रित प्रजनन रीति के द्वारा व्यस्क मादाओं को उच्च नस्ल के ऊँटों से गर्भित करने की प्रणाली अपनाई गई एवं फार्म में उत्पन्न उत्तम नस्ल के ऊँटों का वितरण ऊँट विकास हेतु, ऊँटपालकों में करने का लक्ष्य रखा गया।

ऊँटों की प्रजनन प्रणाली की सूक्ष्म समझ को विकसित करना तथा उनका परिणाम का समाधान खोजना जिससे टोले में ऊँटों की संख्या कम होती है।

इस प्रकार समीक्षा की जा सकती है कि केन्द्र और राज्य सरकार तथा अर्द्ध सरकारी व स्वयं–सेवी संगठन इनके जीवन को ऊंचा उठाने के लिए निरन्तर सुविधाऐं प्रदान कर रही हैं। ये नियंत्रित तौर पर निरन्तर योजनाओं में परिमार्जन एवं कठोर परिश्रम करके इनके सामाजिक आर्थिक संरचना को बदलने का प्रयास कर रही हैं। इन संस्थाओं ने आज कई योजनाओं में अपने स्वीकृत लक्ष्यों को प्राप्त भी किया है। वर्तमान में पशुपालकों को अपना परिचय पत्र वितरित कर कई समस्याओं के निवारण के प्रयास किये गये हैं परन्तु यह महत्वपूर्ण बात है कि इन योजनाओं के तहत करोड़ों रूपये व्यय होने पर भी आज उनकी दशा उतनी अच्छी नहीं हैं, जिसकी अपेक्षा की जाती है। राज्य की अधिकांश योजनायें क्षेत्रीय प्रकृति की हैं और इन योजनाओं के निर्माण में पशुपालकों की मुख्य आवश्यकता, जो कि कृषकों की आवश्यकताओं से बहुत भिन्न है, को मद्दे नजर रखकर नही बनाई गई हैं। साथ ही जिन क्षेत्रों पर ये योजनायें लागू भी हुई तो वह अप्रत्यक्ष तौर से पशुपालकों के विकास में क्रियाशील बनी है। परिणामस्वरूप पशुपालकों को इसका पूरा लाभ नहीं मिल पाया है। इसी तरह राजस्थान की भूमि सुधार की योजनाओं ने भी इनकी आवश्यकताओं को नहीं पहचाना है। इन योजनाओं के प्रतिकूल प्रभाव से पर्यावरण दूषित हुआ और इनकी मार से इनका जीवन अधिक कठिन बना।

पिछड़े समाज के पढ़े–लिखे व्यक्ति को आरक्षण नीति के अंतर्गत रोजगार के अवसर अवश्य मिलें हैं, जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में आंशिक परिवर्तन दिखता है लेकिन ऐसे परिवार गिने–चुने है क्योंकि आज भी शिक्षा प्राप्त करने में अधिकांश जाति सदस्यों में सकारात्मक पहल का अभावा पाया जाता है। यही कारण है कि सारे प्रयत्नो के बावजूद भी इस समाज में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है।

इस प्रकार इनके आर्थिक विकास के लिए बनी प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष योजना के क्रियान्वयन की प्रणाली इस प्रकार की है कि जो व्यवस्था इन्हें लाभ पहुंचानें के लिए बनी है, वह लाभ देने की अपेक्षा शोषण को अधिक बढ़ावा दे रही है। इससे समाज में पशुपालकों व अधिकारियों, कर्मचारियों के मध्य तनाव संघर्ष रोष बढ़ा है। अतः आवश्यकता है कि राज्य के पास इनकी पारस्परिक सहभागिता पर आधारित एक रचनात्मक निश्चित आयोजना हो, जिससे इनके मध्य के आपसी संघर्ष को कम किया जा सके। साथ ही गलती करने वालों के प्रति अतिशीघ्रता से कड़ी कानूनी कार्यवाही की जाये तो पशुपालकों को इनके शोषण से बचाया जा सकता है। इसी तरह राज्य में विकास योजनाओं में, पशुओं पर विकास व्यय का विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि ऊँटों पर 1994 के बाद आज तक विकास व्यय शून्य रहा है। फेमीन कोड में इन्हें सम्मिलित

नहीं किया गया है। भेड़ों के विकास में होने वाले व्यय में भी 1994 से निरन्तर गिरावट देखी जा रही है। यहां तक कि भेड़ व ऊन विकास इनके स्थाई आर्थिक विकास हेतु निर्मित हुआ था, वह आज पुनः पशुपालन विकास में विलीन हो गया है। अतः आज राज्य की विकास की नई योजनायें अवश्य हैं परन्तु उनमें पशुपालकों तथा उनकी समस्या को सीमांत (Marginal) स्थान मिला है। बदलते परिवेश के साथ ही राज्य की रूचि भी इनके विकास में कम होने लगी है। इस कारण वर्तमान में पशुपालकों की समस्या को मद्दे नजर रखते हुए भी कोई सकारात्मक सुधारात्मक योजना का निर्माण नहीं हुआ है।

निष्कर्ष

अन्त में एक और व्यवहारिक सुझाव है कि परम्परागत रूप से प्रत्येक गांव का एक औरण व एक 'गोचर' होता है। इस पर सारा पशुधन चरता है। सभी गांव वालों पर इनकी सुरक्षा का भार रहता था। जब हमारी सरकार आई और सक्रिय हुई तो ग्रामीण क्षेत्र के जनसमूह अपनी परम्परागत कार्यप्रणाली और व्यवस्था को भूल कर प्रत्येक छोटी–छोटी बातों के लिए शासन पर आश्रित होते चले गये। इससे इनके जीवन की दयनीय स्थिति विकराल रूप धारण करने लगी, जिसके परिणामस्वरूप आज यह आवश्यक हो गया है कि जिसके पास जितने पशु हैं, वह उनके लिए स्वयं चारे की उपज करने का भी प्रयास करे। यह कार्य पंचायत स्तर पर लागू करना, सर्वोच्चित होगा। यह विचार इसलिए सुसंगत लगता है, क्योंकि संघन चराई के कारण चारे की उपज कम हुई। आज 2–5 हेक्टेयर में केवल एक पशु चरा सकने की क्षमता है। डॉ. ईश्वर प्रकाश के अनुसार "जबकि वास्तविकता में आज इस पर 10 गुणा पशु चराई करते हैं। पशुओं को भरपेट भोजन न मिलने के कारण आज उनकी उत्पादकता न्यूनतम स्तर पर है। अतः आवश्यकता है कि सिंचाई साधनों के विस्तार चारा उगाई में पशुपालक समुदाय अपनी सक्रिय भागीदारी बढ़ावे तथा सघन चराई के दुष्परिणामों से अपने व्यवसाय को बचावे। साथ ही सरकार भी अपने चराई क्षेत्र के विकास की सुधारात्मक योजनाओं में इस समुदाय की सहभागिता को बढ़ावा दे और वैकल्पिक व्यवसायों के युग में इस व्यवसाय को लाभान्वित व्यवसाय बनाने के पक्ष में सकारात्मक एवं अपेक्षित कदम उठाये।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *Agarwal, Arun, 1922: 'The Grass is Always Greener on the Side : A Study of the Raikas' Migrant Pastoralists of Rajasthan, Dryland Network Programme Issues Paper No. 36, London International Institute of Environment and Development.*
2. *Bharara, L.P. 1988: 'Animal Human Relationship and Desertification in Arid Zone', in Disertification Monitoring and Control Scientific Publisher, Jodhpur.*
3. *Dhabriya, S.S. (1988): 'Eco Crisis in the Aravalli Region', Jodhpur Printers Pvt. Ltd*
4. *Enthoven, R.E. (1975): 'The Tribes and Caste of Bombay' (Bombay Grob Central Press-1922) Cosmo Publication's*
5. *Galtung, Joun (1967): 'Scientific Methods in Social Research' New Delhi, Starling Publishing Pvt. Ltd.*
6. *Rollefson, Ilse Kohler (1999): 'From Royal Camel Tenders to Dairy men' Occupational Changes in The Raikas' Jaipur & New Delhi, Rawat Publication.*
7. *Sharma, Dr. Pragya (2005): 'Tribal Society in a Flux' (An Anthropo Study of Raika) Panchsheel Prakashan, Jaipur*